शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार

हनुमान प्रसाद अेन. पारीक
आसिस्टेन्ट प्रोफेसर
कॉलेज ओफ एज्युकेशन, वडस्मा,
तालुका व जिला, महेसाना । गुजरात

सारांश
शिक्षा के मुख्य रूप से तीन आधार माने गये है –दार्शनिक आधार, सामाजिक आधार एवं मनोवैज्ञानिक आधार । पाश्चात्य शिक्षाविदों द्वारा व्यक्त शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार की तुलना में भारतीय शिक्षा व्यवस्था के लिए प्राचीन भारतीय साहित्य में व्यक्त किये गये मनोवैज्ञानिक आधार अधिक महत्वपूर्ण है। भारतीय साहित्य में व्यक्त विचारों के अनुसार मनुष्य की मूल प्रकृति आध्यात्मिक है, मनुष्य के अंदर समस्त ज्ञान विद्यमान है, अन्त:करण के चार स्वरूप है, शिक्षा प्राप्त करने के लिए एकाग्रता, ब्रह्मचर्य का पालन एवं संस्कार अत्यंत आवश्यक है।

शिक्षा ज्ञान की साधना है। ज्ञान आत्मा का प्रकाश है । मनुष्य को ज्ञान बाहर से प्राप्त नहीं होता, अपितु आत्मा के अनावरण से ही ज्ञान का प्रकटीकरण होता है । वास्तव में मनुष्य की इस अन्तर्निहित ज्ञान–शक्ति को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है । इस ज्ञान की प्राप्ति का एकमात्र मार्ग एकाग्रता है। चित्त की एकाग्रता ही शिक्षा का सार है । चित्त ही शिक्षा का वाहन है । चित्त की एकाग्र अवस्था में ही आत्मा के प्रकाश से विषय का यथार्थ ज्ञान होता है । चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है । वास्तव में योग–साधना शिक्षा की प्रणाली है।

शिक्षा मे मनोवैज्ञानिक आधार के बारे में समय समय पर शिक्षाविद्ो द्वारा विचार प्रकट किये जाते रहे है। भारत में शिक्षा एवं शैक्षणिक वातावरण के लिये पाश्चात्य शिक्षाविद्ो एवं विद्वानो द्वारा प्रकट किये गये मनोवैज्ञानिक आधार के बजाय भारतीय साहित्य में व्यक्त किये गये शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार अधिक उपयोगी है।

हमें भारत की उन मनोवैज्ञानिक पद्धतियों की खोज करनी चाहिये जिससे मनुष्य की उन नैसर्गिक शक्तियों का विकास हुआ जिनके कारण भारतीय विद्वान ज्ञान को आत्मसात कर पाये। भारतीय विद्वान वेद्, उपनिषद्, रामायण, महाभारत की रचना कर पाये। इसके पीछे उनकी बौद्धिक, आध्यात्मिक शक्तियां है। प्रस्तुत लेख में शिक्षा के भारतीय मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रकाश डाला गया है ।

१. मनुष्य की मूल प्रकृति आध्यात्मिक

भारतीय मनोवैज्ञानिको के अनुसार मनुष्य की मूल प्रकृति आध्यात्मिक है। प्राय: मनुष्य अपनी इस आध्यात्मिक प्रकृति की ओर सचेतन नहीं रहता। आत्मा सत्, चित् आनन्दस्वरूप है। इसी कारण मनुष्य को गहरे आध्यात्मिक स्तर पर परम सत्य की जिज्ञासा है, जिससे प्रेरित होकर मानव वैज्ञानिक

अनुसंधान करता है, और सत्य की अनवरत खोज में संलग्न है। ज्ञानरूपता में वह अपनी पूर्णता के दर्शन करना चाहता है। आत्मा आनन्दस्वरूप है, अत: सुख की खोज मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है।

श्री अरविन्द के अनुसार "मानव की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसमें एक ऐसी चेतना विद्यमान है, जिसमें वह अपने सीमित भौतिक अस्तित्व से उपर उठ सकता है। यही विशेषता मनुष्य को पशु से भिन्न ठहराती है। दूसरे शब्दो में मनुष्य में एक ऐसा आध्यात्मिक तत्व विद्यमान है, जो उसके भौतिक, प्राणिक और मानिसक पहलुओ से ऊँचा है। यही कारण शरीर है, जो समस्त ज्ञान और आनन्द का वाहक है। यही मनुष्य के भावी विकास का माध्यम है।

मनुष्य की इस आध्यात्मिक प्रकृति के कारण ही उसने कला, संस्कृति, सदाचार और धर्म के रूप में अपने को अभिव्यक्त किया है । मनुष्य इस आध्यात्मिक प्रकृति के कारण अन्य जीवों से भिन्न ही नही है, अपितु उसमे वह शक्ति भी है जिससें वह अने वातावरण को बदल सकता है। अन्य जीवोको विवश होकर भौतिक वातावरण को स्वीकार करके उसी में पड़ा रहना पडता है। या तो वे अपने को उसके अनुकूल बना ले या समाप्त हो जाये । मनुष्य की यह आध्यात्मिक प्रकृति उस पर उपर से लादी हुई नहीं है, वह तो उसके अस्तित्व का मूल तत्व है, इसीलिये जीव शास्त्रियों ने मनुष्य को उच्चतम जीव कहा है, वह अपर्याप्त है। वास्तव में मनुष्य आध्यात्मिक जीव है।

आधुनिक शिक्षा में मानव की इस आध्यात्मिक प्रकृति की घोर उपेक्षा की जा रही है। परिणामत: विकास की असीम संभावनाओं से वह पूर्णत: वंचित है तथा जीवन के उच्चस्तरीय आयामो में प्रवेश नहीं कर पा रहा है। अत: भारतीय मनोविज्ञान के इस महत्वपूर्ण तत्व को शिक्षा का आधार बनाने की आवश्यकता है।

२. मनुष्य के अन्तर में समस्त ज्ञान

भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार आत्मा ज्ञानस्वरूप है। मनुष्य को बाहर से ज्ञान प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत आत्मा के अनावरण से ही ज्ञान का प्रकटीकरण होता है। श्री अरविन्द के शब्दो में "मसितष्क को ऐसा कुछ भी नहीं सिखाया जा सकता जो जीव की आत्मा मे सुप्त ज्ञान के रूप में पहले से ही गुप्त न हो।" स्वामी विवेकानन्द के अनुसार "शिक्षा व्यक्ति में पहले से विद्यमान, अन्तनिर्हित पूर्णता की अभिव्यक्ति का साधन है, माध्यम है। उस पूर्णता का प्रकाश है।" कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता, सब अंदर ही है। हम जो कहते है कि मनुष्य जानता है, यथार्थ में मानवशास्त्र–संगत भाषा में हमें कहना चाहिये कि वह आविष्कार करता है, अनावृत या प्रकट करता है । अत: समस्त ज्ञान, चाहे वह भौतिक हो अथवा आध्यात्मिक, मनुष्य की आत्मा में है । बहुधा वह प्रकाशित न होकर ढका रहता है और जब आवरण धीरे–धीरे हट जाता है तब हम कहते है कि "हम सीख रहे है। जैसे–जैसे इस अनावरण की क्रिया बढती जाती है, हमारे ज्ञान की वृद्धि होती जाती है।"

जिस मनुष्य पर से यह आवरण उठता जाता है, वह अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा अधिक ज्ञानी है और जिस पर यह आवरण तह पर पडा रहता है, वह अज्ञानी है। जिस पर से यह आवरण पूरा हट जाता है वह सर्वज्ञ तथा सर्वदर्शी हो जाता है।

३. अन्त:करण के चार स्वरूप

ज्ञान प्रक्रिया को समझने के लिये अन्त:करण के स्वरूप और उसकी प्रकृति को समझना आवश्यक है। वेदान्त–परिभाषा में अन्त:करण की वृत्ति के चार रूप बताये गये है । मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त।

मन से वितर्क और संशय होता है। बुद्धि निश्चय करती है। अहंकार से गर्व अर्थात् अहंभाव की अभिव्यक्ति होती है। चित्त में स्मरण होता है। अन्त:करण को मन भी कहा गया है तथा योगदर्शन में चित्त संज्ञा दी गयी है। अन्त:करण जड़ तत्व है। आत्मा के प्रकाश से ही अन्त:करण द्वारा ज्ञान–प्रक्रिया सम्पन्न होती है।

३.१ ज्ञान प्रक्रिया

आत्मा के प्रकाश से अन्त:करण चतुर्विध ज्ञान को प्राप्त करता है। प्रत्यक्षादि ज्ञान अन्त:करण की वृत्तियों के रूप में प्रकाशित होते है और एकाग्रता आदि उपायो से इनकी अवस्थिति का पूर्णबोध सम्पन्न होता है । ज्ञेय वस्तु के साथ तादात्म्य से जो ज्ञान प्राप्त होता है, वही एकमात्र सच्चा और सीधा ज्ञान होता है। शेष सब ज्ञान आनुमानिक होता है ।

३.२ एकाग्रता

ज्ञान की प्राप्ति के लिये एकाग्रता एक महत्वपूर्ण तत्व है। एकाग्रता की शक्ति जितनी अधिक होगी, ज्ञान की प्राप्ति उतनी ही अधिक होगी। एक ही विषय पर ध्यान देने का नाम है "एकाग्रता"। मन या चित्त बहुत चंचल होता है। निरंतर बाह्य विषयों में प्रवृत्त होता रहता है। ऐसा चित्त अशान्त और अस्थिर बना रहता है। चित्त की इस बिखरी हुई शक्ति से कोई कार्य सम्पादित नहीं होता। राजयोग में धारणा, ध्यान और समाधि एकाग्रता के ही क्रमिक स्तर है। समाधि पूर्ण एकाग्रता की स्थिति है, जहाँ ज्ञानस्वरूप आत्मा का दर्शन होकर विषय का यथार्थ ज्ञान होता है।

३.३ ब्रह्मचर्य

प्राचीन भारतीय पद्धति के मूल में सबसे महत्वपूर्ण वस्तु थी, 'ब्रह्मचर्य का अभ्यास'। भारतीय चिंतन के अनुसार जीवन और प्राण का मूल स्त्रोत भौतिक नहीं, आध्यात्मिक है, किंतु जिस आधारशिला पर जीवन शक्ति क्रियाशील होती है, वह भौतिक है । अब्रह्मचर्य जैसे शारीरिक होता है, वैसे ही मानसिक और वाचिक भी । दक्ष संहिता में अब्रह्मचर्य के आठ प्रकार बताये गये है। स्मरण, चर्चा, क्रीडा, दर्शन, एकान्त में स्त्री से बातचीत करना, भोगेच्छा, संभोग–निश्चय, और संभोग क्रिया– ये आठ प्रकार के मैथुन है, जिनके विपरित आचरण करना ही ब्रह्मचर्य है।

भारतीय विद्या का मूल आधार ब्रह्मचर्य पालन है, जो प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अपरिहार्य है। प्राचीन भारतीय शिक्षा–पद्धति के अनुसार विद्याध्ययनकाल ही ब्रह्मचर्य आश्रम कहलाता था। स्वामी विवेकानन्द ने भी शिक्षा प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक बताया है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दो में– "पूर्ण ब्रह्मचर्य से प्रबल बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न होती है। वासनाओं को वश में कर लेने से उत्कृष्ट फल प्राप्त होते है। काम–शक्ति को आध्यात्मिक शक्ति में परिणत कर लो। यह शक्ति जितनी प्रबल होगी उससे उतना ही अधिक कार्य कर सकोगे। ब्रह्मचारी के मसितष्क में प्रबल कार्यशक्ति और अमोध इच्छाशक्ति रहती है।"

ब्रह्मचर्य पालन के लिये मन का नियंत्रण आवश्यक है । वास्तव मं ब्रह्मचर्य पालन शारीरिक की अपेक्षा मानसिक अधिक है । भौतिकता पर आधारित पाश्चात्य मनोविज्ञान में तो ब्रह्मचर्य की संकल्पना ही नहीं है। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार ज्ञानार्जन एवं बालक के व्यक्तित्व का विकास ब्रह्मचर्य पालन के बिना आकाश–कुसुम के समान है।

३.४ संस्कार सिद्धांत

भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार संस्कार सिद्धांत शिक्षा का मूलाधार है। संस्कारो के आधार पर ही शिक्षा के द्वारा बालक का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास होता है। अधिगम की संपूर्ण क्रिया इस संस्कार सिद्धांत पर ही आधारित है। आधुनिक मनोवैज्ञानिको ने चूहों और कुत्तो पर प्रयोग करके अधिगम के विभिन्न सिद्धांत निर्धारित किये है। भारतीय मनोविज्ञान में अधिगम के समस्त सिद्धांत इन संस्कार सिद्धांतो के आधार पर हजारो वर्ष पूर्व सफलतापूर्वक प्रयुक्त किये जा चुके है।

अवचेतन–मनोविज्ञान के द्वारा किये गये अन्वेषणो के बहुत पहले ऋषियों को यह ज्ञान प्राप्त हो गया था कि मनुष्य की समस्त क्रियाओं, विचारों तथा उद्वेगो आदि का कारण उसकी अवचेतन–अवस्थाएँ है। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार इस अवचेतन को बनाने वाले घटक संस्कार है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में संस्कार–सिद्धांत की घोर उपेक्षा की जा रही है। परिणामत: शिक्षा निष्फल हो रही है । अत: शिक्षा का आधार संस्कार–सिद्धांत को बनाने की आवश्यकता है।

४. योग विज्ञान

योग विज्ञानका इतिहास अति प्राचीन है। वैदिक ऋषियो ने ब्रह्मविद्या के साथ ही योग विद्या का आविष्कार किया । कुछ विद्वानो की मान्यता है कि वैदिक मन्त्रो की रचना योगाभ्यास की उच्चतम भूमिकाओं का ही परिणाम है, जिसे पतंजलि ने ऋतंभरा प्रज्ञा से संयुक्त हो जाता है, तब ऋतंभरा प्रज्ञा की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । उसी ऋतंभरा प्रज्ञा की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उसी ऋतंभरा प्रज्ञा की स्थिति में विश्व के जिन सत्यों का दर्शन होता, वे ही वैदिक मंत्रो में प्रकट हुए है। योग की उच्चतम भूमिका समाधि–अवस्था है। उस समाधि–अवस्था में सत्य–दर्शन की क्षमता जिन्हें प्राप्त हुई वे ऋषि थे। अविद्या के प्रभाव से मानव का चित्त स्वभावत: बहिर्मुख है। इस बहिर्मुख चित्त को अन्तर्मुख करने का प्रयत्न योग का प्राथमिक रूप है। योग विज्ञान भारतीय मनोविज्ञान का व्यावहारिक रूप है। इसे शिक्षा का आधार बनाना आवश्यक है। हमारे शरीर में अपार शक्तियाँ विद्यमान है, परंतु वे क्षुप्त पडी हुई है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य अपने मस्तिष्क का केवल दसवां भाग ही उपयोग मे लेता है, शेष भाग सुप्त है । यह सुप्त भाग योग के द्वारा जाग्रत किया जा सकता है। योगाभ्यास के द्वारा मानसिक शक्तियों का विकास होता है, यह विज्ञान–सिद्ध है। जब मनुष्य का नाडी केन्द्र, जिस पर उसका व्यवहार निर्भर करता है, विशेष उत्तेजित हो जाता है, उस समय वह अपनी विवेक शक्ति खो देता है। प्राचीन भारतीय योगविद्या की पद्धति की इसका एक सही समाधान है। आसन, प्राणायाम एवं ध्यान से उत्तेजित नाडी केन्द्र संतुलित एवं शान्त हो जाते है एवं विक्षिप्त अन्त स्त्रावी ग्रंथियां नियमित स्त्राव करती है। अत: यह आवश्यक है कि शिक्षाशास्त्री इस सनातन भारतीय विद्या का अध्ययन करे एवं योग को शिक्षा पद्धति का आधार बनाये।

संदर्भ सूचि

1. Best, John W. & Kahn. James V. (2001). Research in Education, Prentice Hall of India, New Delhi.
2. Chauhan, S. S. (2005). Advanced Educational Psychology, Vikas Publishing house, New Delhi.
3. Kaul, Lokesh. (1984). Methodology of Educational Research, Vikas Publishing house, New Delhi.
4. Mangal, S.K. (2004). Advanced Educational Psychology, PHI Publications, Delhi.
5. शर्मा, गणपतराम एवं व्यास, हरिश्चन्द्र. (2007). अधिगम शिक्षण और विकास के मनोसामाजिक आधार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर.
6. सरीन, शशिकला एवं सरीन, अंजनी (2007). शैक्षिक अनुसंधान विधियां, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा.
7. ओड़, लक्ष्मीलाल के. (2007). शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठिभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर.